विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४६, चैत्र पूर्णिमा, १६ अप्रेल, २००३ वर्ष ३२ अंक १०

धम्मवाणी

अत्तानं चे तथा कयिरा, यथाञ्ञमनुसासति।
सुदन्तो वत दमेथ, अत्ता हि किर दुद्दमो॥

धम्मपद- १५९.

यदि पहले अपने को वैसा बनाये जैसा कि दूसरों को उपदेश देता है, तो अपने आपको सुदान्त करने वाला (भलीभांति वश में करने वाला) ही दूसरे का दमन कर सकता है।

[धारण करे तो धर्म]

धर्म को अनुभूति से समझें!

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की चौबीसवीं कड़ी)

धर्म 'धर्म' है। विश्व के विधान को धर्म कहते हैं। कुदरत के कानून को धर्म कहते हैं। ऋत को धर्म कहते हैं। निसर्ग के नियमों को धर्म कहते हैं। धर्म कभी हिंदुओं का नहीं होता, बौद्धों का नहीं होता, जैनियों का नहीं होता, ईसाइयों का नहीं होता, मुसलमानों का नहीं होता। धर्म सबका होता है। कुदरत का कानून सब पर लागू होता है। विश्व का विधान सब पर लागू होता है। इस सर्वव्यापी धर्म को समझ जायँ। इस घट-घटवासी धर्म को अनुभूति से जान जायँ तो बड़ा कल्याण हो गया। तब हमें धर्मचक्र चलाना आ गया। दुःखचक्र के बाहर निकलना आ गया। लोकचक्र के बाहर निकलना आ गया। भवचक्र के बाहर निकलना आ गया। नहीं समझ पाये तो भवचक्र ही भवचक्र चल रहा है। दुःखचक्र ही दुःखचक्र चल रहा है। अपने को हिंदू कहते फिरें, कि बौद्ध कहते फिरें, कि जैन कहते फिरें, कि मुस्लिम कहते फिरें...। अपने आपको किसी नाम से पुकारें, पर भीतर का होश जागे। जो संवेदनाएं जागती हैं उनके बारे में यह पता ही नहीं कि कहां जागती हैं? पता ही नहीं कैसे जागती हैं? उन संवेदनाओं के प्रति राग भी जग रहा है, द्वेष भी जग रहा है और होश ही नहीं कि हम भीतर ही भीतर राग जगाये जा रहे हैं। भीतर ही भीतर द्वेष जगाये जा रहे हैं। होश ही नहीं तो दुःखचक्र ही चलता है ना! भवचक्र ही चलता है ना! कहां बाहर निकले? भीतर से यह होश जाग जाय, धर्म का यह बोध जाग जाय तो कल्याण हो। केवल बौद्धिक स्तर पर किसी बात को समझ लेने मात्र से कोई आदमी मुक्त नहीं हो सकता। अनुभूतियों से जाने। इन वेदनाओं से जाने। दर्शन से जाने।

अपने भीतर क्या हो रहा है, इसे अनुभूतियों से जानते-जानते सारा भवचक्र पहले समझ में आ जाय कि कैसे भवचक्र चलता है? कैसे दुःखचक्र चलता है? संवेदनाएं जाग रही हैं और उनके प्रति हम राग पैदा कर रहे हैं। संवेदनाएं जाग रही हैं और हम द्वेष पैदा कर रहे हैं तो दुःखचक्र ही दुःखचक्र, भवचक्र ही भवचक्र। उस पर रोक लगाना है। कैसे लगायें?

संवेदनाएं तो जागेंगी ही। दुःखद भी जागेंगी, सुखद भी जागेंगी। जाग रही हैं और उन्हें हम जान रहे हैं फिर भी राग नहीं जगाते, द्वेष नहीं जगाते। बस, रास्ता मिल गया। मुक्ति का रास्ता मिल गया। अंतर्मन की गहराइयों में जो स्वभाव-शिकंजा बन गया था और बार-बार उस स्वभाव की वजह से राग जगाये जा रहे थे, द्वेष जगाये जा रहे थे। जब देखो तब रागरंजन, द्वेषदूषण, मोहविमूढ़न; रागरंजन, द्वेषदूषण, मोहविमूढ़न। अब उसको पलट रहे हैं।

वीतरागता, वीतद्वेषता, वीतमोहता भले जरा-जरा-सी शुरू तो हुई और यों शुरू होते-होते एक अवस्था आयेगी, अब आये या जब कभी आये, रास्ते पर चल पड़े हैं। रास्ता बहुत लंबा है पर लंबे से लंबे रास्ते की यात्रा पहले कदम से शुरू होती है। दस हजार मील की यात्रा भी पहले कदम से शुरू होगी। जिसने कभी पहला कदम ही नहीं उठाया उससे क्या आशा करें कि अंतिम लक्ष्य तक पहुँच जायगा। जिसने पहला कदम तो उठाया। अब आशा की जा सकती है कि दूसरा भी उठायेगा, तीसरा भी उठायेगा, चौथा भी उठायेगा। यों कदम-कदम चलते-चलते लक्ष्य के नजदीक पहुँचते जा रहा है, पहुँचते जा रहा है। पहुँच ही जायगा और वह अवस्था प्राप्त करलेगा जहां **"विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा"** –चित्त को सारे भव-संस्कारों से मुक्त कर दिया और नयी तृष्णा जाग ही नहीं सकती। मन इतना निर्मल हो गया, निर्विकार हो गया कि स्वभाव ही पलट गया। विकारों की जड़ें निकल गयीं। तो नया संस्कार बनें नहीं, पुराने सारे समाप्त हो गये। मुक्त हो गया। समय लगता है। बात समझ में आ जाय तो कोई भी व्यक्ति कदम-कदम आगे बढ़े। जितना-जितना बढ़े, उतना-उतना दुःखमुक्त हुआ, उतना-उतना विकारविमुक्त हुआ और एक रास्ता मिल गया। अब यह लोक भी सुधरा और अपने आप परलोक भी सुधरेगा। लेकिन रास्ता केवल बुद्धि के स्तर पर समझ कर रह जायँ, अनुभूति पर उतरे नहीं, तो चलना नहीं हुआ। केवल बुद्धि ने जान लिया कि ऐसा रास्ता होता है, ऐसा भवचक्र हुआ करता है और उसको तोड़ने के लिए ऐसा धर्मचक्र हुआ करता है। तो बुद्धिरंजन हुआ, बुद्धिकिलोल हुआ, बुद्धिविलास हुआ। क्या मिला उससे? अनुभूति पर उतरे और उस रास्ते पर चलना शुरू कर दे। बड़ा कल्याण, बड़ा कल्याण। जब रास्ता पता ही नहीं, भूल गये तब धर्म केवल शब्दों में रह गया तो कोई चले भी कैसे?

कोई व्यक्ति अनेक जन्मों से अपने सद्गुण परिपूर्ण करता-करता, उन दिनों की भाषा में कहते थे, अपनी पारमिताएं परिपूर्ण करता-करता उस अवस्था पर पहुँच गया कि अब इस जन्म में उसे सम्यक संबोधि प्राप्त हो सकती है। अनेक जन्मों से बोधिसत्त्व का जीवन जीता हुआ, जीता हुआ अब यह अंतिम जन्म है। सम्यक संबुद्ध बनेगा। मुक्त हो जायेगा। तो कैसे सम्यक संबुद्ध बनेगा? जो रास्ता पहले कोई जानता ही नहीं था। लोग भूल गये थे। रास्ता तो बहुत पुराना, पर भूल गये थे, उसे खोज निकाला है।

तब कहता है **"पुब्बे अननुस्सुतेसु",** पहले कभी सुना ही नहीं। अरे, पहले कभी सुना ही नहीं। **"पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि",** उस धर्म में, उस कुदरत के कानून में, उस विधान में, उस ऋत में मेरे प्रज्ञा के चक्षु खुले; ज्ञान के चक्षु खुले; विद्या के चक्षु खुले। सारी बात समझ में आ गयी। अपना मंगल साध लिया, औरों के मंगल में लग गया। रास्ता मिलना चाहिए। रास्ता ही नहीं मिले तो भटक तारह जाय। केवल पाठ बन कर रह जाय। तो पाठ तो उस समय भी था। राजकुमार था। राजा ने देश के बड़े-बड़े विद्वानों को बुला करके ,बड़े-बड़े दार्शनिकों को बुला करके उस समय के भारत की जो भी शिक्षाएं थीं, अध्यात्म की शिक्षाएं थीं, वह सारी दिलायी और फिर भी कहता है "पुब्बे अननुस्सुतेसु" पहले कभी सुना ही नहीं, ऐसे धर्म में चक्षु खुले। तो ऋग्वेद में तो आयी ना विपश्यना, वह तो सुना ही होगा ना –

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सञ्च पश्यति। स नः पार्षदति द्विषः।

ऋगवेद का ऋषि कहता है – **"यो विश्वाभि विपश्यति भुवना"**, जो विपश्यना करता है। सत्य के अभिमुख हो करके ,विश्व के अभिमुख हो करके विपश्यना करता है। 'विश्व' के मतलब क्या? जिसका विशदीकरण हो रहा है। जो फैल रहा है, फैल रहा है। भीतर एक विकार जागा कि उसका विशदीकरण होना शुरू हुआ। बढ़ता ही जाता है, बढ़ता ही जाता है। संवर्धन हो रहा है। उसे उन दिनों की भाषा में विश्व कहते थे। **'विश्वाभि'**, अपने भीतर जो यह संवर्धन हो रहा है, इसके अभिमुख हो करके जो वर्तमान की सच्चाई को दृष्टाभाव से देख रहा है, माने विपश्यना करता है। **"सञ्च पश्यति"**, सम्यक रूप से करता है। सम्यक रूप से माने भोक्ताभाव नहीं, बल्कि दृष्टाभाव, साक्षीभाव, तटस्थभाव। **"स नः पार्षदति द्विषः"**, वह सारे द्वेषों के बाहर चला जाता है। उसके पास द्वेष रह नहीं सकेगा, राग रह नहीं सकेगा, विकार रह ही नहीं सकेगा।

तो भाई, यह पाठ तो था ही ना! और सुना भी अवश्य होगा लेकिन अर्थ बदल गये क्योंकि इसका अभ्यास छूट गया। कैसे करे? विपश्यना की प्रशंसा है पर करे कैसे? पच्चीस-छब्बीस सौ वर्ष पूर्व के भारत में यह विद्या बिल्कुल लुप्त हो चुकी थी। अब खोजते-खोजते, विभिन्न प्रकार की साधनाएं करते-करते इसे खोज निकाला। खोज निकाला तब अपने पूर्व जन्मों को देखता है, और भूतकाल को देख करके कहता है अरे, **"पोराणो मग्गो।"** बड़ा पुराना मार्ग है रे! बहुत पुराना मार्ग है, **"एस मग्गो सनन्तनो।"** लोग चलना बंद कर देते हैं तो मार्ग लुप्त हो जाता है। अब फिर से जागा है। फिर से जागा है और उससे अपना कल्याण हुआ है। लोगों का कल्याण होना शुरू हुआ। चलें, तब कल्याण होता है। सभी परंपराओं में विपश्यना समायी हुई है। यह भारत का बड़ा महत्त्वपूर्ण अध्यात्म है। सब में समायी हुई है। लेकिन कैसे करे? करना भूल गये।

अपनी बात कहूं –बहुत कट्टर हिंदू सनातनी घर में जन्मा, पला। बचपन से ही गीता का पाठ करता आया। पाठ करता आया पर कभी समझने की कोशिश नहीं की। और ठीक तरह से तो समझ ही नहीं पाया। कैसे समझूं? विपश्यना में-से गुजरा तो बहुत-सी बातें इतनी साफ समझ में आने लगीं। एक श्लोक गीता का, जिसका न जाने पहले कितनी बार पाठ किया होगा, विपश्यना के बाद बात समझ में आयी। गीता कहती है –

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि, भुञ्जानं वा गुणान्वितं।
विमूढ़ा नानु पश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥

"विमूढ़ा नानु पश्यन्ति", जो विमूढ़ हैं वे विपश्यना नहीं कर सकते। वही कर सकते हैं जिनके ज्ञान के चक्षु खुल गये माने भीतर की सच्चाई देखने की शक्ति जिन्होंने प्राप्त कर ली। विपश्यना करता है तो भीतर के ज्ञानचक्षु खुलते हैं। ज्ञानचक्षु खुलते हैं तो और गहरी विपश्यना करता है। और गहरी विपश्यना करता है तो और गहराइयों से ज्ञानचक्षु खुलते हैं। तब सारी बात समझ में आने लगती है। इन्हीं शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं, **'उत्क्रामन्तं',** उठ खड़ा हुआ। क्या उठ खड़ा हुआ? कान के दरवाजे पर, कि आंख के दरवाजे पर, कि नाक के दरवाजे पर, कि जीभ के दरवाजे पर, कि त्वचा के दरवाजे पर, कि मन के दरवाजे पर –इन छः दरवाजों में से किसी दरवाजे पर खटपट हुई, उनका अपना कोई विषय टकराया। स्पर्श हुआ तो मानस का यह खंड अपना सिर उठाता है। अरे, कुछ हुआ? यहां कुछ हुआ तो उसे कहा **'उत्क्रामन्तं'**। इतने में मानस का दूसरा खंड **'स्थितं'**, रुक करके याद करता है, ऐसा तो पहले भी कभी हुआ था। तो यह शब्द है तो क्या शब्द है? यह रूप है तो क्या रूप है? यह रंग है तो क्या रंग है? यह गंध है तो क्या गंध है? यह रस है तो क्या रस है? यह स्पर्श है तो कैसा स्पर्श है? यह चिंतन है तो कैसा चिंतन है? उसको याद करता है। उसका मूल्यांकन करता है तो **'स्थितं'**। और मूल्यांकन करता है तो जिसका मूल्यांकन अच्छा कर दिया तो शरीर में सुखद संवेदनाएं चलने लगीं। मूल्यांकन कर दिया, यह तो बहुत बुरा है। तो दुःखद संवेदनाएं चलने लगीं और मानस का वह हिस्सा जो भोक्ताभाव का जीवन जीता है, भोगने लगा। सुखद संवेदना चली तो सुख भोगने लगा –**'भुञ्जानं', भुञ्जानं'**। दुःखद संवेदना चली तो उसका दुःख भोगने लगा, **'भुञ्जानं, भुञ्जानं'**। भोक्ताभाव ही भोक्ताभाव, भोक्ताभाव ही भोक्ताभाव। **'भुञ्जानं'** होते-होते **'गुणान्वितं, गुणान्वितं'**, गांठें बँधने लगी, बंधन बँधने लगे।

हर बार जो भोगता है, सुखद अनुभूति को भोगते हुए राग जगाता है। दुःखद अनुभूति को भोगते हुए द्वेष जगाता है। तो राग जगाता है या द्वेष जगाता है। राग जगाता है या द्वेष जगाता है। तो गांठें ही गांठें, गांठें ही गांठें। कैसा गांठ-गँठीला हो गया भीतर। सारा मानस कैसा गांठ-गँठीला हो गया। तो दुःख ही दुःख, पीड़ाएं ही पीड़ाएं।

यह बात भाई, केवल पाठ कर लेने से कैसे प्राप्त होती रे! कैसे प्राप्त हो? केवल पाठ कर लेने से क्या समझेंगे? अच्छा समझ भी लिया। यह व्याख्या किसी से सुन लिया। अच्छा, यों होता है। यह मानस इस प्रकार काम करता है। जानने वाला हिस्सा जानता है। पहचानने वाला पहचान कर मूल्यांकन करता है। अनुभव करने वाला अनुभव करता है। प्रतिक्रिया करने वाला प्रतिक्रिया करता है। जान लिया। क्या हुआ? कर तो वैसे ही रहा है। भीतर तो फिर भी उसी प्रकार सारा काम कर रहा है। उसी प्रकार कर रहा है। तो क्या हुआ? मिला क्या उससे? उस स्वभाव को पलटना है। उस स्वभाव को पलटने के लिए ये चारों के चारों खंड कैसे काम करते हैं? बाहर के विषयों से इंद्रिय का संपर्क होने पर भीतर कैसी संवेदना चली? और उस संवेदना का मूल्यांकन होने पर कैसी प्रतिक्रिया हुई? यह कैसे जाने? इसको नहीं जानता है तो उस स्वभाव के बाहर नहीं निकल सकता। तो धर्म केवल पाठ का विषय हो करके रह जाय, तो कैसे हमारा कल्याण करेगा? तो पहले बुद्धि के स्तर पर समझेंगे। फिर उसके अनुसार अपना जीवन ढालने लगेंगे। तब उस अवस्था पर पहुँच ही जाएंगे – **"विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा"**।

भगवान महावीर की वाणी को देखें। यही विपश्यना की ही बातें – **"आयत चक्खु, लोक विपस्सी",** अरे, भीतर चक्षु मिल गये। लोक माने शरीर। उन दिनों की भाषा में 'लोक' शरीर को कहते थे। तो शरीर में विपश्यना करने लगा। काया में विपश्यना करने लगा। काया में स्थित हुआ। भीतर क्या हो रहा है उसको जानने लगा तो चक्षु मिल गये। **"विमूढ़ानानु पश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः",** ज्ञान चक्षु आ गये, देखने लगा। **"पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु चक्खुं उदपादि",** चक्षु जाग गये। तब **"आयत चक्खु लोक विपस्सी"**।

"लोकस्स अधोभागं जानयि, उद्धव भागं जानयि, तिरियं भागं जानयि", –इस सारे शरीर को जानता है। उसके नीचे के हिस्से को, ऊपर के हिस्से को, आड़े-तिरछे, अगल-बगल, सब जगह जानता है। कहां-कहां

क्या हो रहा है? सब जगह जानता है और जान करके समझता है, **"एहि मच्चेहि",** अरे, यह तो मृत्य है। अरे, यह तो अनित्य है! अरे, यह तो नश्वर है! यह तो भंगुर है। और **"सन्धि विदित्ता",** संधि को देखता है। चित्तधारा पर राग की संधि कहां हुई? चित्तधारा पर द्वेष की संधि कहां हुई? उसे देखता है। देखते-देखते अपने स्वभाव को बदल लेता है। **एस वीरे पसंसिये, ये बद्धे पडिमोइए** –अरे, वह वीर हो जाता है। प्रशंसा के योग्य हो जाता है जो अपने सारे बंधनों को खोल लेता है।

कैसे खोल लेगा? पाठ करके खोल लेगा? बुद्धि-विलास करके खोल लेगा? अरे भाई, काम करना पड़े ना! अंतर्मुखी होकर के अंतर्तप करना पड़े ना! भीतर के ज्ञानचक्षु जगाये माने अनुभूतियों वाली प्रज्ञा जगाये और देखे, कहां बंधन बँध रहे हैं? कैसे बंधन बँध रहे हैं? इस स्वभाव को तोड़े तब देखे कैसे बंधन खुल रहे हैं? नये बंधन बँधते नहीं, पुराने खुल रहे हैं, खुल रहे हैं। यह जो राग जगाने का स्वभाव है, वह टूट रहा है। वीतराग होने का स्वभाव बलवान हो रहा है। द्वेष जगाने का स्वभाव टूट रहा है। वीतद्वेष होने का स्वभाव बढ़ रहा है। मोह जगाने का स्वभाव टूट रहा है। वीतमोह होने का स्वभाव बढ़ रहा है। प्रत्यक्ष अपनी अनुभूतियों से जाने। कोरा बुद्धि-विलास करके रह जायगा, वाणी विलास करके रह जायगा तो झगड़े ही झगड़े। हमारा शास्त्र यह कहता है, हमारी परंपरा यह कहती है। तुम्हारी परंपरा ऐसी, हमारी परंपरा ऐसी। आखिर बावलापन बढ़ायेगा। हमारा धर्म ऐसा, तुम्हारा धर्म ऐसा। झगड़े ही झगड़े; झगड़े ही झगड़े। अरे भाई, धर्म न तुम्हारा न हमारा, जो धारण करे उसका। अपने को हिंदू कहनेवाला भी धर्म धारण करे तो धार्मिक हो गया। अपने को जैन कहने वाला भी धर्म धारण करे, धार्मिक हो गया। बौद्ध कहने वाला भी धर्म धारण करे, धार्मिक हो गया। अपने को मुस्लिम कहनेवाला, ईसाई कहने वाला, सिक्ख कहनेवाला, पारसी कहनेवाला, यहूदी कहनेवाला, अपने आपको किसी नाम से पुकारे, पर धर्म धारण करे; सार्वजनीन धर्म धारण करे, जो सब पर लागू होता है। ऐसा-ऐसा होगा तो यह परिणाम आयेगा ही। यह परिणाम नहीं चाहिए तो ऐसा-ऐसा मत होने दें। अरे, कितनी वैज्ञानिक बात है! इसे कहां दार्शनिक फिलासफीज में उलझा कर रख दिया? कहां कर्मकांडों में उलझा कर रख दिया? कितनी सीधी-सीधी, सरल-सरल बात!

एक वैज्ञानिक हमें समझाता है कि दो हिस्से हाइड्रोजन, एक हिस्सा आक्सीजन, ये दोनों मिलें तो मोइस्चर तैयार होता है, पानी हो गया। जहां हाइड्रोजन नहीं हो, आक्सीजन भी नहीं हो, वहां मोइस्चर होगा ही नहीं। जिस किसी ग्रह, उपग्रह में कोई आक्सीजन नहीं, हाइड्रोजन नहीं या दोनों का उचित अनुपात नहीं, वहां नमी भी नहीं, मोइस्चर भी नहीं। नियम हैं कुदरत के। इसमें हिंदूपने की क्या बात, बौद्धपने की क्या बात, जैनपने की क्या बात, मुस्लिमपने की क्या बात, ईसाईपने की क्या बात? कुदरत का कानून है, विश्व का विधान है। ऐसा-ऐसा होगा तो यह परिणाम आयेगा। तो भाई, भीतर से अविद्या ही अविद्या हो, बेहोशी ही बेहोशी हो। पता ही नहीं क्या हो रहा है और उस बेहोशी में तृष्णा जगा रहे हैं। राग की तृष्णा जगा रहे हैं, द्वेष की तृष्णा जगा रहे हैं तो दुःख ही दुःख। दुःख का यह परिणाम आयेगा ही। बंधन ही बंधन, दुःख ही दुःख। भीतर की बेहोशी दूर कर दें, होश में आ जायँ कि भीतर क्या हो रहा है तो सब कुछ जान गये। क्या हो रहा है भीतर? किस प्रकार की संवेदना प्रकट हुई? किस प्रकार की अनुभूति हुई? और इस अनुभूति की वजह से हमारा यह प्रतिक्रिया करनेवाला मानस क्या काम करने लगा? उसके उस स्वभाव को तोड़ने के लिए अनित्य बोध जगाते हैं। अरे भाई, अनित्य है! फिलासफी की बात नहीं, अनुभूति से जान रहे हैं ना –अनित्य है, बदलता है, बदलता है। तो अपने आप स्वभाव पलटना शुरू हो गया। अपने को हिंदू कहे तो स्वभाव पलटने लगा। बौद्ध कहे तो स्वभाव पलटने लगा। मुस्लिम कहे, ईसाई कहे, कुछ फर्क नहीं पड़ता।

आदमी 'आदमी' है। भीतर का होश नहीं है तो अपने लिए बंधन ही बंधन, बंधन ही बंधन बांधता है। व्याकुलता ही व्याकुलता, व्याकुलता ही व्याकुलता। भीतर का होश जागता है तो बंधन खोलने लगता है। नया बंधन बांधता नहीं, पुराना खोलता है। खोलते-खोलते दुःखों के बाहर निकल जाता है। अपनी मुक्ति अपने हाथ, अपना पराक्रम अपना पुरुषार्थ। स्वयं काम करना पड़े ना! कोई रास्ता भले बता दे। जो चला है उस रास्ते पर वह रास्ता बता दे, बड़े प्यार से बता दे, बड़ी करुणा से बता दे। फिर भी काम तो स्वयं करना पड़ेगा। और काम यही है कि अपने भीतर की सच्चाइयों को जानो। सच्चाइयों को जानो। कोई कल्पना नजदीक न आ जाय। कोई दार्शनिक मान्यता नजदीक न आ जाय। केवल जो अपनी अनुभूति पर उतर रहा है उसे जानो। तो संत कहता है –

किम सचियारा होविए, किम कूड़े तुट्टे पाळ।
हुकुम रजाई चल्लणा, नानक लिखिआ नाळ॥

'किम सचियारा होविए', भारत के इस महान संत ने भारत की भाषाओं को एक नया शब्द गढ़ कर दिया। भारत की भाषाओं में दुखियारा शब्द चलता है। दुखियारा वह जिसके पास सुख का नामोनिशान नहीं। भारत की भाषाओं में सुखियारा शब्द भी चलता है। सुखियारा वह जिसके पास दुःख का नामोनिशान नहीं। इसने एक शब्द दिया –**'सचियारा'**। –सचियारा वह जिसके पास झूठ का नामोनिशान नहीं। तो झूठ भी यह वाणी वाला झूठ ही नहीं, भीतर जो कुछ प्रकट हो रहा है। इस 'सचखंड' की यात्रा करने चल रहे हैं जहां सत्य ही सत्य, सत्य ही सत्य, तो सचियारा। प्रतिक्षण सचियारा। **'किम कूड़े तुट्टे पाळ',** –झूठ कि जितनी परतें हैं, सब दूर हो जायँ। तब मालूम होने लगेगा, 'हुकुम' क्या है? इस कुदरत की, इस प्रकृति की, या यों कहें इस ईश्वर की, इस अल्लाह-ताला की रज़ा क्या है? क्या मंशा है, क्या हुकुम है? अब उसके अनुसार चलना शुरू कर देंगे, चलना शुरू कर देंगे। यह हुकुम, यह रज़ा पुस्तकों में ढूंढे नहीं मिलेगी। इन प्रवचनों में नहीं मिलेगी। भीतर से अंतर्मुखी होकर देखने लगेंगे। ओ, ऐसा है। राग जगाते हैं, वह दंड देता है। द्वेष जगाते हैं, वह दंड देता है। रागविहीन होते हैं, द्वेषविहीन होते हैं तो पुरस्कार मिलता है –चित्त निर्मल होता है, शांति मिलती है। अपने भीतर अनुभव से ही जानेगा। और यों करने लगा, रास्ते पर चलने लगा तो समझो, मंगल ही मंगल। कल्याण ही कल्याण। स्वस्ति ही स्वस्ति। मुक्ति ही मुक्ति। मुक्ति ही मुक्ति।

धम्मगिरि पर जलदान का सुअवसर

धम्मगिरि पर गर्मियों में सदा ही पानी की तंगी बनी रहती है। अब जबकि साधकों की संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है तब इस बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए कहीं दूर से पानी ले आने की योजना पर काम चल रहा है। इस पर कुल लागत का अनुमान लगभग ३०-३२ लाख रुपये है। जो साधक-साधिकाएं इस महानपुण्यवर्धक दान में आंशिक या पूर्णरूप से भाग लेना चाहें, उनके लिए यह एक अनुपम सुअवसर उपलब्ध है।

पाकिस्तान में पहला विपश्यना शिविर

गत २५ फरवरी से ८ मार्च तक कराची शहर के मध्य में स्थित फ्रेंसिस्कन फ्रेरी परिसर में सफलतापूर्वक संपन्न हुआ, जिसमें कुल १० पुरुष और ५ महिलाओं ने भाग लेकर धर्मलाभ प्राप्त किया। ध्यान का स्थल शहर के मध्य में होते हुए भी अत्यंत प्रशांत एवं छायादार वृक्षों से आच्छादित होने के कारण बहुत ही मनोरम था। कराची के ही कुछ समर्पित साधकों ने मिल कर कठिन परिश्रम करते हुए शिविर-व्यवस्था का भार संभाला था। साधकों ने विपश्यना विद्या को शुद्ध वैज्ञानिक विधि करार देते हुए बिना किसी विरोध के नित्य नियमित ध्यान करने की बात सहर्ष स्वीकार की और सामूहिक साधना के लिए निम्न दो स्थानों की भी घोषणा की गयी – १. हर दूसरे और अंतिम रविवार, सायं ५:३० से ६:३० बजे तक, **स्थानः** जनाब अब्दुल अज़ीज, २८२, लेन नं. १८, शरफ़ाबाद, कराची-७४८००, पाकिस्तान. फोनः ४९३-०३७२, ४९३-०९९७. (२)- हर तीसरे रविवार, प्रातः १० से ११

बजे तक, **स्थानः** जनाब जाहिद येज़दान, कराची –
Email- zahid_yezdan1508@hotmail.com

भावी शिविरों के लिए लोगों का उत्साह जागा है और शीघ्र ही तिथियां निश्चित हो रही हैं। अधिक जानकारी और बुकिंग के लिए कृपया **जनाब अब्दुल अज़ीज** से उपरोक्त पते और फोन नं. पर संपर्क करें।

नए उत्तर दायित्वः आचार्य

1-2. Mr. Bill & Mrs. Virginia Hamilton, *To serve Dhamma Torana (Ontario)*

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्रीमती शीलादेवी चौरसिया, *सिक्किम की धर्मसेवा*
२. डॉ. ओम शंकर श्रीवास्तव, *'धम्म सलिल' की धर्मसेवा*
3. Mr. George Hsiao *To serve Korea*

उत्तरदायित्वों में परिवर्तन

भिक्षुणी आचार्या

1.Ven. Ming Chia Shih, *To serve Taiwan including Dhammodaya*

आचार्य

१. प्रो. प्यारेलाल एवं श्रीमती सुशीला धर, 'धम्म तिहाड़', दिल्ली, जेल-शिविरों पर शोध, पुलिस शि. के अतिरिक्त भूटान की धर्मसेवा
२. डॉ. धनंजय चौहान, प्रमुख आचार्य के सचिव के अतिरिक्त 'धम्म नासिका' नाशिक की धर्मसेवा
३-४. श्री श्यामसुंदर एवं श्रीमती कांता खद्दरिया, 'धम्म लिच्छवी', 'धम्म उपवन', 'धम्म विमुत्ति', 'धम्म सुवत्थि' के साथ उत्तरपूर्वी राज्यों (सिक्किम छोड़ कर), बिहार, झारखंड एवं उत्तर बंगाल की धर्मसेवा।
५. श्री अशोक तलवार, 'धम्मसिखर' सहित हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, 'धम्म चक्क', 'धम्म पट्ठान' 'धम्म कारुणिक' की धर्मसेवा।
6-7. Mr. Klaus & Mrs. Nadia Helwig, *To serve Philippines and Distribution of teaching sets of East Asian Languages.*

नव नियुक्तियां :

१. श्री वसंत कराडे, कोल्हापुर
२. श्री ओम प्रकाश शिरसट, नाशिक
३. श्री मधुकर काळे, नाशिक
४. श्री मधुकर चोखन्द्रे, नागपुर
५. श्री रमाकांत झुनझुनवाला, आकोट
६. श्री लक्ष्मी प्रदास मांडले, जबलपुर
७-८. डॉ. शरद एवं डॉ. (श्रीमती) पुष्पलता बादोळे, भिलाई
९. श्री कैलाशचंद्र बागड़िया, रायपुर
10.Mr. Ian Hofstetter, Australia
11. Mrs. Brigit Mackenzie, Australia
12 -13. Mr. Michael & Mrs. Jacqueline Schmidt, Germany
14. Ms Heidi Rehaag, Germany
15. Ms Andrea Schmitz, UK
16-17. Mr. Guy & Mrs. Tamar Gelbgisser, Israel
18. Mr. Guy Hertzog, Israel
19. Mrs. Ann Aston, UK

दोहे धर्म के

धारण कर ले बावरे! बिन धारे ना त्राण।
योग क्षेम दातार है, धर्म बड़ा बलवान॥

अंतर में डुबकी लगे, भीग जायँ जब अंग।
धर्म रंग ऐसा चढ़े, चढ़े न दूजा रंग॥

संकट सारे दूर हों, विघ्न सभी हट जायँ।
शुद्ध धर्म के पथिक की, बाधा सब हट जाय॥

यही धर्म का नियम है, यही धर्म की रीत।
धारे ही निर्मल बने, पावन बने पुनीत॥

धरम धार सुखिया रहे, तन मन पुलकित होय।
धरम त्याग दुखिया रहे, तन मन विकलित होय॥

सत्य धरम धारण करे, सो सचियारा होय।
करे निखालिस चित्त को, तभी खालसा होय॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
११-१३, सनस प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड,
पूणे-४११००२, फोनः ४४८-६१९०
महालक्ष्मी मंदिर लेन, २२ भूलाभाई देसाई रोड,
मुम्बई-४०००२६, फोनः २४९२-३५२६
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

जीवन मँह उतरे बिना, धरम न सम्यक होय।
काया वाणी चित्त रा, करम न निरमल होय॥

धार्यां साचै धरम नै, साचो मंगळ होय।
मिथ्या दरसन ग्यान स्यूं, भ्रांति मिटै ना कोय॥

दवा बिचारी के करै? सेयां ही सुख होय।
धरम बापड़ो के करै? धार्यां ही हित होय॥

भटकै मिंदर देवरा, रोवै सीस नवाय।
सांच धरम पाळ्यां बिना, करसी कूण सहाय?

बिरथा तरक-बितरक है, बिरथा बाद-बिवाद।
धार्यां ही निरमळ हुवै, चाखै इमरत स्वाद॥

चरचा ही चरचा करै, धारण करै न कोय।
धरम बिचारो के करै? धार्यां ही सुख होय॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ –४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
फोनः ०२२- २२०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४६, चैत्र पूर्णिमा, १६ अप्रेल, २००३**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-,विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003-05

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३)२४४०७६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: info@giri.dhamma.org